आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 5/ दिसंबर 2023
Received: 12/12/2023; Accepted: 20/12/2023; Published: 26/12/2023

# पहली सदी के हिन्दी नाटकों में स्त्री की समस्याएँ

**डॉ. सुनीथा गोपाल नारायणकर**
संगोल्लि रायन्ना फस्ट ग्रेड डिग्री कॉलेज
बेलगावी

डॉ. सुनीथा गोपाल नारायणकर, **पहली सदी के हिन्दी नाटकों में स्त्री की समस्याएँ**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 5/ दिसंबर 2023, (520-523)

हर युग की अपनी समस्याएँ होती हैं। "पुराना जमाना अच्छा रहा और आज का समय बुरा है"[१] ऐसा निर्नय हम नही कर सकतें। समय की अपनी अपनी समस्यायें होती हैं। हर क्षेत्र की भी अपनी समस्या होती है। समाज के दो सदस्य स्त्री और पुरुष भी इस से परे नहीं है। किसी कार्य की प्रगति में बाधा ही समस्या होती है। व्यक्ति जो कार्य चाहता है उस की पूर्ति उसके हितानुसार ही रहे यह चाह हर किसी की होती है। उसके हितानुसार फलसिद्ध नहीं हुई तो वहाँ समस्या शुरू होती है। स्त्री की सम्स्या उसके हित के खिलाफ धटति घटनायें होती हैं। समाज में रहते समय समस्या का होना स्वाभाविक है, क्योंकि हर कोई अपना स्वार्थ चाहता है। अपने स्वार्थ की प्राप्ति में दूसरे के स्वार्थ जब बाधा डालते हैं तब समस्याएँ खडी होती है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि जिस तरह से दर्पण सामने वाली वस्तु का यथार्थ रूप से प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। ठीक उसी तरह ही नाट्यविधा में तत्कालीन समस्याओं को प्रतिबिंबित किया जाता है। विषय के अनुसार तथा समय की परिस्थिति के अनुसार रचनाकार अपने रचनाओं को रचता है और उसमें भिन्न-भिन्न समस्याओं को चित्रित करता है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता की परंपरा में अतीत काल से ही स्त्री पर अन्याय, अत्याचार हुवा है। वह केवल भोग्य ही बनी है। हम इस तरह से कह सकते हैं कि वह मनुवादी विचारधारा की शिकार बनी है और वर्तमान समय में भी परिस्थिति में बहुत अंतर नहीं है। पुरूष प्रधान संस्कृति उस पर हावी हूआ है। वैज्ञानिक संशोधनों के आधार पर मनुष्य अपना भौतिक जीवन बहुत ऊँचा उठाने के पिछे लगा है इसी के कारण वह अध्यात्मावादी जीवन से बिछुड रहा है। अब तक की पुरूष प्राधन सभ्याता में पुरुषों की प्रत्येक विजयश्री के पीछे किसी न किसी स्त्री का ही योगदान रहा है। चाहे वह माँ, पत्नी, बहन, बेटी या प्रेमिका हो। स्त्री इतनी महान होकर भी समाज में प्रताडित हो रही है। इसके बहुत सारे प्रमाण दिए जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए:-

रामायण की सीता और उर्मिला, महाभारत की द्रोपदी, कृष्ण की राधा, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, जीजाबाई, सावित्रीबाई फुले आदि।

पहली सदी (२००१-२०१०) के नाटककारों ने स्त्री समस्याओं को विविध कोणोंसे देखा , परखा और विवेचित किया है। इस दशक के नाटकों में विफल दापत्या जीवन, गैर कानूनी शारीरिक संबंध के कारण उत्पन्न अवैध संतानों के सामाजिक संरक्षण, दहेज प्रथा, प्रणय त्रिकोण, प्रेम विवाह के संबंध में अविभूत नवीन विचारधारा, स्वत्वाधिकार जैसी स्थितियों ने स्त्री की समस्याओं को एक नवीन विषय एवं जटिल रूप प्रदान किया है। इन नाटककारों ने विविध स्त्री चरित्रों को सृष्टि कर परंपरा एवं आधुनिक संबंधो की नवीन मान्यताओं और उनसे उत्पन्न जटिलताओं, स्त्री की आर्थीक निर्भरता तथा समानाधिकार की भावनाओं के कारण परिवारिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जन्मी समस्याओं का नाटकीय अभिव्यक्ति का विषय बनाया है।

सामाजिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में महिलाओं को भोगने पडने वाली समस्याएँ बहुत अधिक हैं। लेकिन आज का वातावरण स्त्री को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लायक हैं। पुराने जमाने की स्त्री पुरूष के आश्रय में रहती थी तो आज वह पुरूष के बराबर कहीं कहीं पुरूष से आगे है। अब स्त्री दुसरों से निंयंत्रित नहीं है, उसके द्वारा समाज का नियंत्रण संभव हुआ है। रसोई से राजनैतिक शासन केंद्र तक उसका सान्निध्य आज के इस युग में देखा जा सकता है।

"समाज की लघु इकाई कुटुंब में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह के द्वारा स्त्री और पुरूष दंपत्ति हो जाते हैं। दांपत्य जीवन में 'पुरूष और नारी का संबंध एक से दो होने की इच्छा का प्रकाशन है। प्रत्येक को अपनी आशा की पूर्ति के लिए एक दूसरे की आपश्यकता होती है"।[2]

बीसवीं शती के उत्तरर्ध्द और एकीसवीं सती के आरंभ में वैज्ञानिक विकास तथा नवीन बौध्दिक क्रांति के फलस्वरूप समाज और परिवार में गहरा परिवर्तन आ गया है। परिवार समाज की सबसे छोटी एवं महत्वपूर्ण इकाई है। आदमी के रागात्मक संबंधों का आरंभ और विकास परिवार में ही होता है। संतुष्ट परिवारिक जीवन आदमी और औरत का सपना होता है। उन्होंने परिवार को अपनी सुरक्षा हेतु बनाया है। समाज और परिवार का अटूट संबंध है। अत: परिवार सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यक्ति पर बनाया गया एक सुरक्षित ढांचा है। एक व्यक्ति परिवार और समाज से अलग कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। विभिन्न चरित्रवाले व्यक्तियों के आपसी सहयोग और उनके समझौते पर परिवार की नींव डाली गयी है। संयुक्त परिवार में रहना यह हमारी भारतीय संस्कृति का एक आदर्श अंग है। इसका आधार आनेवाले बहू पर रहता है। यदी बहू अच्छे खानदान की है तो थोडा बहुत समझदार भी रहेगी। जो परिस्थिति के अनुकूल हें वहीं सच्ची औरत है। परिवार को अलग करने में स्त्री का अधीक

हिस्सा रहता है। यदि यह समझदार है, अच्छे घराने की है, उसमें प्रेम और त्याग की भावना है तो अलग न भी हो, पर सब कुछ उसके बस में नहीं। यदी उसे घर की सत्ता मिल जाए तो अपना सब दू:ख भी कुछ क्षण के लिए भूल जाती है।

आजकल सम्मिलित परिवार का आकर्षण कम हुआ है। देहातों में संतुक्त परिवार प्रणालि अभी भी है। नगरों में इसका प्रमाण नगण्य है। आज कल पति-पत्नि और उनके बच्चे तक ही परिवार सीमित हो गया है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा को अधिक आश्रय मिला है। बच्चे की राय भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। आज माँ बाप का कार्य- क्षेत्र और अधिक सीमित हो गया है।

पीढी से पीढीगत अंतर सदैव विध्यामान रहा है और रहेगा इसमें कोई संदेह नहीं। प्राचीन पीढी के मूल्यों और आस्थाओं तथा नई पीढी में सदैव टकराहट होती रही है। कभी-कभी इसी विद्रोह मार्ग से व्यक्ति नया भी खोज पाया है। समय के चक्र के साथ अनेक सामाजिक, राजनितिक तथा आर्थिक कारणों से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया शूरू हुई। यूवा मानस अब यह महसूस करने लगा है कि उनकी निजी व्यक्तित्व में संयुक्त परिवार एक बहुत बडी बाधा है। परिणामस्वरूप नई और पुरानी पीढी के जीनव-मूल्य आपस में टकराने लगे है। परस्पर संघर्ष की स्थिति गंभीर होने लगी। जिसका सबसे अधिक प्रभाव तत्कालीन मध्यवर्गीय चेतना पर पडा। संयुक्त प्रणाली के विघटन से व्यक्ति को अपनी व्यक्तित्व को विकसीत करने के अवसर तो पूर्ण प्राप्त हुए लेकिन उसके सामने समस्याओं का जमघट भी कम नही हुआ।

आज स्त्री शिक्षा, भौतिकवादी, संस्कृति और आर्थिक दबाव के कारण विभक्त परिवार की उपयोगिता बढ गई है। लगभग सभी सामाजिक वर्ग की स्त्रियाँ उपयुक्त कारणों से ही परिवार के बाहर निकल रही है। इस प्रकार की परिस्थितियों ने पति और पत्नी तथा माता-पिता पर नई भूमिका लाद दी है।

"परिवारिक संबंधों में पति पत्नी का संबंध सुस्थिर बनाने के बारे में सोचना समूचित है। शादी समाज-संम्मत संस्था है जिसमें युवक युवती के अभिभावक उनकी सम्मति के साथ पति पत्नी के रूप में अपने पुत्र व दूसरे सज्जन की पुत्री कॊ पूजा-विधियॊं के बाद आपस में मिलाते है।"[3]

"जन्म- जन्मांतर का संबंध है शादी। विदेशी शासनकाल में भी विवाह को दो आत्माओं का चिर मिलन मानते आये है। भारत में स्वतंत्र दाह से अब विवाह संबंधी विचारों में बदलाव आ गया है। स्वतंत्र- यौनाचार, जीवन के कुच वर्ष एक साथ रहने का समझौता, दोनों की काम की पूर्ति का उपाय आदि का निम्नस्तरों पर विवाह की मान्यता उतर गयी है"।[4]

"क्षमा शार्मा के अनुसार " देहेज प्रथा सती प्रथा से भी बदत प्रथा है"[5] यध्यापि दहेज निषेद कानून १९६१ ने दहेअज प्रथा पर रोक लगादी है। परंतु वास्तविकता यह है कि समस्या विध्यामान है । अखबारों में

हम हर रोज चोरी, डकैती, हत्या आत्महत्या की खबरों के साथ ही किसी नव वधू को दहेज के कारण जला दिये जाने की खबर अवश्य मिलती है।

**संदर्भ सूची:**


१. http:/mybestbook.blogspot.com

२. भारत और विश्व: डॉ. राधाकृष्ण: पृ सं ६० प्रकाशन १९७६

३. नैतिक मूल्य; परख और सुझाव: डॉ ए झे अब्रहाम : पृ सं ८७ प्रकाशन २००१

४. स्वतंत्र्योतर हिन्दी नातकों में नैतिक मूल्य: डॉ ए झे अब्रहाम : पृ सं ४० प्रकाशन २००१

५. साहित्यशीलन- पत्रिका पृ सं १५३


**********